# अथ षोडशोऽध्यायः

## मोक्षधर्मनिरूपणात्मक

श्री गरुड उवाच

**श्रुता मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः।**
**अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम्॥१॥**

गरुड़ बोले-हे दयासिन्धो! मैं यह सुन चुका हूँ कि अज्ञान के कारण जीव संसार में जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। अब मैं मोक्ष के सनातन उपाय को सुनना चाहता हूँ।।१।।

**भगवन्! देवदेवेश! शरणागतवत्सल!। असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे॥२॥**
**नानाविधशरीरस्था ह्यनन्ता जीवराशयः। जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते॥३॥**

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे शरणागतवत्सल! सम्पूर्ण दुःखों से पूर्ण होने के कारण इस मलिन तथा सारहीन घोर संसार में अनन्त जीवों के समूह नानाविध शरीरों में उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। उनका कोई अन्त नहीं है।।२-३।।

**सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित्।**
**केनोपायेन मोक्षेश! मुच्यन्ते वद मे प्रभो॥४॥**

वे सभी सदा दुःखातुर रहते हैं। उनमें से कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्ष देने वाले प्रभो! वे किस उपाय से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं? यह मुझे बतलाइए।।४।।

(यहाँ यह उल्लेखनीय है कि—गरुड़ सारोद्धार १६/३-१०१ तथा गरुड़महापुराण ध.का.प्रे.ख. ४९/३-१११ की विषयवस्तु प्रायः शब्दशः कुलार्णवतन्त्र १/४/११८ के समान है।)

श्री भगवानुवाच

**शृणु तार्क्ष्य! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः॥५॥**

श्रीभगवान् बोले-हे गरुड़! तुम मुझसे जो पूछ रहे हो वह सुनो, जिसके श्रवणमात्र से भी मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है।।५।।

**अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः।**
**सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः॥६॥**

परब्रह्मस्वरूप देव (अर्थात् परमात्मा) निष्कल[1] (कलारहित) शिव-रूप, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश्वर, निर्मल और अद्वय (द्वैतभाव-रहित) है।।६।।

**स्वयंज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः। निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशाज्जीवसंज्ञकः॥७॥**

वह (परम ब्रह्म-परमात्मा) स्वतः प्रकाशमान, अनादि, अनन्त, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण और सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसी के अंश से जीवों का प्रादुर्भाव होता है।।७।।

**अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः।**
**देहाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः॥८॥**

जैसे अग्निपिण्ड से अनेक चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार अनादि अविद्या[2] से संयुक्त होने पर जीव उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म से पृथक् होकर अपने अनादि कर्मों के प्रभाव से नाना शरीर धारण करते हैं।।८।।

---

१. परम पुरुष को षोडश कलाओं से युक्त बतलाया गया है। प्रश्नोपनिषत् (६/२) में षोडश कलाओं वाले पुरुष को देह में स्थित बतलाया गया है। (इवैवान्तः शरीरे सौम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति)। इसके आगे इस उपनिषत् में यह स्पष्ट किया गया है कि जैसे समुद्र में मिलने पर नदियों के अपने नाम और रूप समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार परम पुरुष-परमात्मा की कलाएँ उससे सङ्गत होने पर अपने नाम और रूप को उसी में विलीन कर देती है, उनका पृथक् अस्तित्व रह ही नहीं पाता और इसीलिए वह परमात्मा अकल (अर्थात् कला-रहित) कहलाता है (प्रश्नोपनिषत् ६।५)। ब्रह्मविद्योपनिषत् (श्लोक ३७-३९) में अनेक दृष्टान्तों के द्वारा यह बोध कराया गया है कि निष्कल की कोई स्थूल सत्ता नहीं होती, अपितु वह नितान्त सूक्ष्म होता है। ब्रह्मविद्योपनिषत् श्लोक ३३ के अनुसार ब्रह्म या परमात्मा जब देहगत (शरीरावच्छिन्न) होता है, तो उसे सकल समझना चाहिए और शरीर रहित अवस्था में उसे निष्कल समझना चाहिए (देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः)। शाण्डिल्योपनिषत् में ब्रह्म के तीन रूप बतलाये गये हैं-सकल, निष्कल और सकल-निष्कल। उसके सत्य, विज्ञान और आनन्दमय (सत्-चित् और आनन्दमय), निष्क्रिय, निरञ्ज, सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वतोमुख, अनिर्देश्य और अमर स्वरूप को ही निष्कल कहा जाता है (द्र० शाण्डिलोपनिषत् अध्याय ३)

२. किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में न समझ कर किसी अन्य रूप में मान लेना ही अविद्या है। (जैसे रस्सी को सर्प या सीपी को रजत समझना) ही अविद्या या अज्ञान है। (जिसे वेदान्त में अध्यास या अध्यारोप भी कहते हैं)। अविद्या के कारण पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता। अविद्या उस अज्ञान को कहते हैं, जिसके कारण आत्मा को देह से अभिन्न मानकर पुरुष स्वर्ग और नरक को भोगता है और वह संसार के आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है (द्र० सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा संस्करण पृ० ७६३)। अविद्या को कहीं पर माया का पर्याय भी माना गया है, किन्तु वेदान्त के परवर्ती आचार्यों ने अविद्या और माया में भेद माना है। उनके अनुसार माया से उपहित (आच्छन्न) ब्रह्म को ईश्वर और अविद्या से उपहित या आच्छन्न ब्रह्म को 'जीव' कहा जाता है। सर्वसारोपनिषत् श्लोक ३, के अनुसार अविद्या से जीव के शरीर में अहंभाव उत्पन्न होता है और विद्या से उसका यह अहंभाव दूर होता है।

**सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः। तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम्॥९॥**
**प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः। सुसूक्ष्मलिङ्गशारीरमामोक्षादक्षरं खग!॥१०॥**

वे जीव सुखप्रद पुण्यकर्मों या दुःखप्रद पापकर्मों से नियन्त्रित होकर नाना योनियों में तत्तत् जाति (योनि) के अनुसार शरीर, आयु तथा अपने कर्मानुरूप भोग को प्रत्येक जन्म में प्राप्त करते रहते हैं। उन जन्मों के अनन्तर भी पुनः अति सूक्ष्म लिङ्ग-शरीर की प्राप्ति का अमिट क्रम मोक्ष-प्राप्ति पर्यन्त चलता रहता है।।९-१०।।

**स्थावराः कृमयश्चाब्जाः[1] पक्षिणः पशवो नराः।**
**धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥११॥**

सांसारिक जीव सर्वप्रथम वृक्ष-लतादि स्थावर (जड़) योनियों में उत्पन्न होते हैं, तदनन्तर कृमि-कीटादि योनियों में, तत्पश्चात् जलचर प्राणियों के रूप में, तब पक्षियों के रूप में, तब पशुयोनि में और तदनन्तर [अन्त्यज आदि जातियों में असाध्य व्याधियुक्त] क्षुद्र मनुष्य के रूप में जन्म लेने के पश्चात् पुनर्जन्म में धार्मिक मनुष्यों के रूप में उत्पन्न होते हैं और तब देवता होते हैं तथा तत्पश्चात् अगले जन्म में अपने सत्कर्मों तथा ध्यान-योग के फलस्वरूप मोक्ष के अधिकारी होते हैं।।११।।

**चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः।**
**सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात्॥१२॥**

सहस्रों बार उद्भिज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज, इन चारों प्रकार के शरीरों को धारण करके तथा उन शरीरों से छुटकारा पाकर अपने सत्कर्म के पुण्यफल से जीव मनुष्य योनि पाने पर यदि ज्ञानी हो जाता है, तो वह मोक्ष को प्राप्त करता है।।१२।।

**चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम्। न मानुषं विनाऽन्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते॥१३॥**

शरीरधारी जीवों की चौरासी लाख योनियों में से मानव योनि के विना अन्य किसी भी योनि में तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता।।१३।।

**अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः।**
**कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥१४॥**

इन चौरासी लाख योनियों में हजारों-हजार करोड़ बार जन्म लेने के पश्चात् ही जीव कदाचित् अपने पुण्य-सञ्चय से मनुष्य योनि को प्राप्त करता है।।१४।।

---

१. कृमयश्चाजाः गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ४९/११ तथा गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित यह पाठ समीचीन नहीं है। मेरे द्वारा संशोधित पाठ का समर्थन विष्णुपुराण २/६/३२, शिवपुराण ५/१६/२६, कुलार्णवतन्त्र १/१२, स्कन्दपुराण ३/२/५/५ और ४/३५/१८ से भी होता है द्रष्टव्य- ततः क्षितिं समासाद्य जायन्ते देहिनः पुनः। स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः।।१८४ तत्रानुभूयदुःखानि जायन्ते कीटयोनिषु। निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः।।१८५ संश्लिष्टाः पक्षिभावेन भवन्ति मृगजातिषु। मार्गं दुःखमतिक्रम्य जायन्ते पशुयोनिषु।।१८६ (मार्गं =मृगयोनिस्थं)। क्रमाद् गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः। इत्यादि। भविष्यपुराण ४/६/१८४-१८७।

**सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।**
**यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः?॥१५॥**

मोक्ष के साधनभूत एवं अति दुर्लभ योनि में जन्म प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं करता उससे अधिक पापी इस संसार में और कौन हो सकता है?।।१५।।

**नरः प्राप्योत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम्।**
**न वेत्त्यात्महितं यस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः॥१६॥**

सबसे उत्तम मानव-योनि में जन्म और सौष्ठव सम्पन्न सक्षम ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्म-हित को नहीं जानता और उसे जान कर भी सिद्ध नहीं करता, वह ब्रह्मघातक होता है।।१६।।

**विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते।**
**तस्माद्देहं धनं रक्षेत्पुण्यकर्माणि साधयेत्॥१७॥**

शरीर के सहयोग के विना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ और काम को तथा परम पुरुषार्थ-मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता। अतः वह अपने शरीर रूपी-सम्पदा की रक्षा करे और उससे पुण्यकर्मों को सम्पादित करे।।१७।।

**रक्षेच्च सर्वदात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्।**
**रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन्भद्राणि पश्यति॥१८॥**

मनुष्य सर्वदा अपने आत्मा (अर्थात् शरीर) की रक्षा करे। उसका आत्मा ही सर्व-विध कल्याण का भाजन होता है। अतः वह उसकी रक्षा का यत्न करे, क्योंकि जीवित रहने पर ही वह अपने जीवन में अपना कल्याण देख सकता है।।१८।।

**पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम्। पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः॥१९॥**

मनुष्य को ग्राम, खेत, धन और गृह की प्राप्ति पुनः पुनरपि हो सकती है, वह शुभाशुभ कर्म को भी पुनः कर सकता है, किन्तु वह इस शरीर को पुनः-पुनः नहीं प्राप्त कर सकता।।१९।।

**शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः। [1]नेच्छन्ति हि तनुत्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः॥२०॥**

बुद्धिमान् मनुष्य सदैव इस शरीर की रक्षा का उपाय किया करते हैं। कुष्ठादि पाप-रोगों से पीड़ित रोगी भी शरीर को त्यागने की इच्छा नहीं करते।।२०।।

**तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च।**
**ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिराद् तेन[2] मुच्यते॥२१॥**

शरीर की रक्षा धर्म का आचरण करने के लिए करनी चाहिए अर्थात् शरीर की रक्षा का उद्देश्य यह

---

१. कुलार्णवतन्त्र १/२१ से स्वीकृत पाठ। पाठान्तर - न हीच्छन्ति च पुनस्त्यागमपि।
२. प्रविमुच्यते ।

होना चाहिए कि इसके माध्यम से धर्म का आचरण किया जाय। धर्माचरण का लक्ष्य होना चाहिए ज्ञान की प्राप्ति। ज्ञान का उद्देश्य होना चाहिए ध्यान-योग। उस ध्यान-योग से मनुष्य शीघ्रमेव मुक्ति पा सकता है।।२१।।

**आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्।**
**कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं तारयिष्यति॥२२॥**

यदि मनुष्य स्वयं ही अपने आत्मा को अपने अहित से निवारित नहीं करता, तो उसका उससे अधिक हितैषी अन्य कौन हो सकता है, जो कि उसके आत्मा का उद्धार करेगा।।२२।।

**इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः।**
**गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति॥२३॥**

जो मनुष्य इस लोक में इसी जन्म में नरकरूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं कर लेता वह औषधिरहित देश-परलोक में (अर्थात् नरक में) जाने पर उस नरक-व्याधि से पीड़ित होने पर क्या करेगा?।।२३।।

**व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्।**
**निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत्[1]॥२४॥**

मनुष्य के शरीर में वृद्धावस्था व्याघ्री (बाघिन) के समान [दबोच कर खून चूसने के लिए] आती है। उसकी आयु टूटे-फूटे (छिद्र युक्त) घड़े में स्थित जल के समान समाप्त होती जाती है और रोग उस पर शत्रु की भाँति प्रहार करते हैं। अतः उसको अपने लोक-परलोक को सुधारने के लिए श्रेयस्कर कार्य (धर्माचरण, ज्ञान-प्राप्ति और ध्यानयोग) का अभ्यास करना चाहिए।।२४।।

**यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः।**
**यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समाचरेत्[2]॥२५॥**

जब तक दुःख नहीं आ जाय, जब तक विपत्ति नहीं आती और जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ती, तब तक मनुष्य श्रेयस्कर धर्म-कर्म को निरन्तर करता रहे।।२५।।

**यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्त्वं समभ्यसेत्।**
**सन्दीप्ते को नु भवने कूपं खनति दुर्मतिः[3]॥२६॥**

जब तक यह शरीर स्वस्थ रहता है, तब तक मनुष्य को तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते रहना चाहिए। ऐसा दुर्बुद्धि मनुष्य कौन हो सकता है, जो कि अपने घर में आग लग जाने पर (उसको बुझाने के लिए) कुआँ खोदना प्रारम्भ करता है।।२६।।

---

१. तु० - व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुश्च संस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ।।- भर्तृहरि।

२. कुलार्णवतन्त्र १/२७ से स्वीकृत पाठ। पाठान्तर--समभ्यसेत्। द्र० -यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः। आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।।

३. प्रोदीप्ते भवने च कूपखनन-प्रत्युद्यम कीदृशः। वैराग्यशतक ७।

**कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः।**
**सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः[1]॥२७॥**

नाना सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने से काल का ज्ञान ही नहीं हो पाता। खेद है कि मनुष्य यह नहीं समझ पाता कि वास्तविक सुख कैसे प्राप्त होता है और दुःख का कारण क्या है तथा अपना हित कैसे हो सकता है।।२७।।

**जातानार्तान् मृतानापद्ग्रस्तान् दृष्ट्वा च दुःखितान्।**
**लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन[2]॥२८॥**

इस जगत् में उत्पन्न मनुष्यों को रोगादि से आर्त (दुःखी), मृत्यु को प्राप्त, आपद्ग्रस्त और दुःखी देखकर भी यह लोक-समुदाय मानो मोहरूपी मदिरा के पान से मदोन्मत्त रहने के कारण जरा-मृत्यु और नरक-यातना आदि से भयभीत नहीं होता।।२८।।

**सम्पदःस्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्।**
**तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः॥२९॥**

धन-सम्पत्तियाँ स्वप्न के समान क्षणभंगुर हैं, यौवन भी उस पुष्प के समान है, जो कुछ दिनों के पश्चात् मुरझा जाता है और मनुष्य की आयु आकाश में चमकने वाली बिजली के समान चञ्चल है। इस तथ्य को जानते हुए किस मनुष्य को धैर्य हो सकता है? अर्थात् इस क्षणभंगुरता से अवगत कोई भी ज्ञानी मनुष्य निश्चिन्त नहीं रह सकता।।२९।।

**शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम्।**
**बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्[3]॥३०॥**

मनुष्य के लिए एक सौ वर्ष का जीवन भी अत्यल्प है। उस जीवन का आधा भाग निद्रा और आलस्य में बीत जाता है, जो अल्प जीवन (आधा जीवन) शेष रहता है, वह भी बाल्यावस्था में, नाना रोगों में, वृद्धावस्था में तथा नाना दुःखों को झेलने में निष्फल बीत जाता है।।३०।।

**प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।**
**विश्वस्तश्च[4] भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥३१॥**

जो कार्य प्रारम्भ करने योग्य है (अर्थात् मोक्ष-लाभ के लिए जो धर्माचरण, ज्ञान-लाभ और ध्यानयोग आदि करना चाहिए) उसके विषय में कोई प्रयास न करने वाला, जिस ब्रह्मचिन्तन आदि के विषय में

---

१. आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।

२. द्र०-दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते। पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।। वैराग्यशतक ७।

३. शतं जीवितमत्यलपं निद्रा स्यादर्धहारिणी। बाल्यरोगजरादुःखैरर्द्धं तदपि निष्फलम्।। कुलार्णवतन्त्र १/३१। आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतस्तस्यार्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।। वैराग्यशतक ९१

४. विश्वस्तश्च-गरुडपुराण ध०का०प्रे०ख० ४९/३१ से स्वीकृत पाठ। विश्वस्तव्यो-गरुडपुराण सारोद्धार के सभी अन्य संस्करणों में उपलब्ध पाठ।

जागरूक रहना चाहिए उस विषय में प्रयास रहित होने से सोये रहने वाला और भय के स्थान (इस नश्वर तथा क्षणभङ्गुर संसार) में विश्वास रखने वाला कौन अभागा मनुष्य काल के द्वारा नहीं मारा जाता।।३१।।

**तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते। अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः[1]॥३२॥**

जल में उठने वाले फेन (झाग) या बुद्बुद् के समान अल्प काल तक स्थित रहने वाले क्षण-भङ्गुर शरीर को प्राप्त करके जीवात्मा उसमें निवास करने लगता है। इस शरीर में निवास उसको अति प्रिय लगता है। किन्तु यह शरीर अनित्य है (नश्वर है)। तब भला इसमें निवास करने वाला जीवात्मा निर्भय होकर कैसे रह सकता है।।३२।।

**अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः। अनर्थे चार्थ-विज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः॥३३॥**

जो मनुष्य अहितकर विषय-वासना को ही अपना हितकर कहे, अनित्य देह-गेह आदि को ही सदा स्थायी समझे और अनर्थकर[2] धन-सम्पदादि को ही अपने लिए अर्थकर (अर्थात् प्रयोजन सिद्धि की वस्तु) समझे वह अपने वास्तविक अर्थ (अर्थात् मोक्षप्राप्ति के उपायस्वरूप आत्मज्ञान और ध्यानयोग रूप प्रयोजन) को नहीं जानता।।३३।।

**पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुद्ध्यति।**
**पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः॥३४॥**

ईश्वर की माया से मोहित होने के कारण मनुष्य आँखों से देखते हुए भी गिर पड़ता है अर्थात् आत्मज्ञान और ध्यानयोग से मोक्ष होता है—यह तथ्य जानते हुए भी मोक्ष मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है, वह ज्ञान की बातों या आत्मज्ञान विषयक उपदेशों को सुनते हुए भी उनके तात्पर्य का बोध नहीं कर पाता है और धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों को पढ़ते हुए भी उनके अर्थ को नहीं जान पाता है।।३४।।

**सन्निमज्जज्जगदिदं[3] गम्भीरे कालसागरे। मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुद्ध्यते॥३५॥**

मृत्यु, रोग और वार्द्धक्य (बुढ़ापा) रूपी ग्राहों (मकरों) के द्वारा कालरूपी गम्भीर (गहरे) सागर में डुबाये जाते हुए इस जगत् को कोई नहीं जान पाता है।।३५।।

**प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।**
**आमकुम्भ इवाम्भस्थो विशीर्णो न विभाव्यते॥३६॥**

प्रतिक्षण क्षीण होते (बीतते) हुए जीवन-काल का ज्ञान उसी प्रकार नहीं हो पाता। जिस प्रकार जल के अन्दर स्थित कच्चे घड़े के विगलित होने का ज्ञान नहीं हो पाता है।।३६।।

---

१. तु०-तोयफेनसमे देहे जीवे शकुनिवत् स्थिते। अनित्येऽप्रियसंसारे कथं तिष्ठन्ति निर्भयः।। कुलार्णवतन्त्र १/३३।

२. श्रीमद्भागवत ११/२३/१८-१९ में धन को स्तेय (चोरी), हिंसा, अनृत, दम्भ, काम, क्रोध, स्मय (गर्भ), मद (अहंकार), भेदभाव, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा (ईर्ष्या), व्यभिचार की प्रवृत्ति, द्यूतक्रीड़ा में आसक्ति तथा मदिरापान जैसे दुर्व्यसनों को मिलाकर कुल पन्द्रह प्रकार के अनर्थों का का कारण बतलाया गया है।

३. सन्निमज्जज्जगदिदं - कुलार्णवतन्त्र १/३६ से स्वीकृत पाठ। पाठान्तर तन्निमज्जज्जगदिदं-गरुडपुराण सारोद्धार के समस्त मुद्रित संस्करणों तथा गरुडपुरा ध०का० प्रे०ख० ४९/३५ में उपलब्ध पाठ।

**युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।**
**ग्रन्थनं च तरङ्गाणामास्था नायुषि युज्यते॥३७॥**

वायु को बाँधने, आकाश को खण्ड-खण्ड करने और जल की तरंगों को परस्पर बाँधने की कल्पना भले ही सार्थक हो सकती है, किन्तु मनुष्य की आयु के शाश्वत होने के विषय में आस्था करना समुचित नहीं है।।३७।।

**पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते। शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥३८॥**

जो काल समस्त भूमण्डल को दग्ध कर सकता है, मेरु पर्वत को चकना-चूर कर सकता है और सागर के जल को सुखा सकता है, उससे मनुष्य के शरीर के बच सकने की बात ही क्या कही जा सकती है?।।३८।।

**अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे।**
**जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात्।३९॥**

यह मेरा बालक है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी धन-सम्पदा है और ये मेरे बन्धु-बान्धव हैं, ऐसा कहने वाले मनुष्य रूपी बकरे को काल रूपी भेड़िया बलात् (झपटकर) मार डालता है।।३९।।

**इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्। एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥४०॥**

मैंने यह कार्य कर लिया है, यह करना है और यह अन्य कार्य कुछ किया जा चुका है और कुछ अभी अधूरा पड़ा है—इस प्रकार की इच्छा और चेष्टा वाले मनुष्य को यमराज अपने अधीन करके ले जाता है।।४०।।

**श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।**
**न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथवाऽकृतम्॥४१॥**

अतः विवेकशील मनुष्य को चाहिए कि जो कार्य आने वाले कल के दिन करना हो, उसे आज के ही दिन कर ले और जो अपराह्ण में (दोपहर के पश्चात्) करना हो, उसे पूर्वाह्ण में (दोपहर से पूर्व) ही कर ले, क्योंकि मृत्यु इसकी प्रतीक्षा नहीं करती कि मनुष्य ने अपना कार्य पूरा कर लिया है कि नहीं।।४१।।

**जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्।**
**मृत्युशत्रुमधिष्ठो[1]ऽसि त्रातारं किं न पश्यसि॥४२॥**

वृद्धावस्था जिसको मार्गदर्शन कराती है और प्रचण्ड रोग ही जिसके सैनिक हैं, ऐसे मृत्यु रूपी शत्रु के सम्मुख तुम स्थित हो। ऐसी स्थिति में तुम अपने रक्षक परमेश्वर की ओर क्यों नहीं देखते?।।४२।।

**तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा।**
**रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥४३॥**

तृष्णा रूपी सुई से बींधे हुए, विषय-वासना रूपी घृत से सींचे हुए और राग-द्वेष रूपी अग्नि में पके हुए मनुष्य को मृत्यु खा जाता है।।४३।।

---

१. प्रधिष्ठोऽसि - निर्णयसागर संस्करण का पाठ। अभिज्ञोऽसि - कुलार्णवतन्त्र १/४३ का पाठ।

**बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि। सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत्॥४४॥**

यह जगत् ऐसा है कि इसमें बालकों, युवकों, वृद्धों और यहाँ तक कि गर्भस्थ भ्रूणों सहित सभी को मृत्यु ग्रस्त कर लेती है।।४४।।

**स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्।**
**स्त्रीमातृपितृपुत्रादि-सम्बन्धः केन हेतुना॥४५॥**

जब यह जीव अपने शरीर को भी इस जगत् में त्यागकर यमलोक को चला जाता है, तब स्त्री, माता, पिता, पुत्र आदि के साथ सम्बन्ध किस हेतु से-किस प्रयोजन से रखा जाय?।।४५।।

**दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः।**
**तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥४६॥**

दुखों का कारण यह संसार ही है, जो इस संसार से सम्बन्ध रखता है, वही दुखी है। जिसने इस संसार का त्याग कर दिया है, वही सुखी है, दूसरा कोई भी कहीं सुखी नहीं हो सकता।।४६।।

**प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्। आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥४७॥**

सभी दुखों के जनक, सभी विपत्तियों के घर और सभी पापों के आश्रयभूत इस संसार (की आसक्ति अर्थात् इसके साथ किसी भी प्रकार के ममत्व) को तत्क्षण त्याग दे।।४७।।

**लौहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥४८॥**

लोहे और लकड़ी के पाशों के बन्धन से बँधा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है, किन्तु पुत्र और पत्नीरूपी पाशों से बँधा हुआ पुरुष कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।।४८।।

**यावन्तः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्।**
**तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥४९॥**

मनुष्य इस जगत् में अपने मन को प्रिय लगने वाले जितने अधिक सम्बन्ध बनाता है, उसके हृदय में उतने ही अधिक शोकरूपी कील-काँटे गड़ते जाते हैं।।४९।।

**वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः। हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥५०॥**

हाय, यह खेद की बात है कि मानव देह में स्थित और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जैसे विषयों का आहार करने वाले इन्द्रिय रूपी चोरों ने इस लोक के (मोक्ष-लाभ में उपयोगी धर्माचरण और परमात्मा के चिन्तन रूपी) समस्त धन को अपहृत करके इस लोक को विनष्ट कर दिया है।।५०।।

**मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशङ्कुं न पश्यति।**
**सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥५१॥**

जैसे मांस -लोलप मछली मांस से लपेटी हुई लोहे की शङ्कु (काँटेदार बडिश, वलछी)को नहीं देख पाती, उसी प्रकार विषय-वासनारूपी सुख का लोभी मनुष्य यम की बाधा को नहीं देख पाता।।५१।।

**हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः। कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग!॥५२॥**

हे गरुड! जो मनुष्य अपने हित और अहित को नहीं जानते, नित्य कुमार्ग में चलते हैं (अधर्माचरण करते हैं) और मात्र अपने उदर-पूर्ति (पेट को भरने) में संलग्न रहते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।५२।।

**निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः।**
**ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥५३॥**

आहार, निद्रा, भय, मैथुन की मूल प्रवृत्तियाँ सभी प्राणियों में समान रूप से रहती है। उन सभी प्राणियों में से जो ज्ञानवान् हैं, उसको मानव कहा गया है और ज्ञानरहित प्राणी को पशु कहा गया है।।५३।।

**प्रभाते मूलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ।**
**रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः॥५४॥**

मूर्ख मनुष्य प्रातःकाल मल-मूत्र के वेगों से, मध्याह्न में भूख और प्यास से और रात्रि के समय काम वासना और निद्रा से पीड़ित होते हैं।।५४।।

**स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः। जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः॥५५॥**

हाय! यह खेद की बात है कि अज्ञान से मोहित सभी जीव अपने शरीर, धन और पत्नी आदि में आसक्त रहने के कारण बार-बार जन्म लेते और मरते रहते हैं।।५५।।

**तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।**
**महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्॥५६॥**

अतः सङ्ग अर्थात् स्त्री-पुत्रादि में और धन-सम्पदा आदि में आसक्ति सदैव त्याज्य है। यदि उसका सर्वथा त्याग न कर सके तो सन्त-महात्माओं की संगति में रहे, क्योंकि सन्त जन ही सांसारिक सङ्ग (आसक्ति) रूपी रोग की औषधि हैं।।५६।।

**सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।**
**यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥५७॥**

सत्संग और विवेक दोनों ही मनुष्य के निर्मल नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नेत्र नहीं हैं, वह अन्धा (सत्संग और ज्ञान से रहित) मनुष्य कुमार्गगामी क्यों नहीं होगा? अर्थात् ऐसा मनुष्य निश्चयमेव अधर्मी और असदाचारी होगा।।५७।।

**स्वस्ववर्णाश्रमाचार-निरताः सर्वमानवाः।**
**न जानन्ति परं धर्मं वृथा नश्यन्ति दाम्भिकाः॥५८॥**

अपने-अपने वर्ण और आश्रम के लिए धर्म रूप में विहित कर्तव्यों और आचारों का पालन करने वाले सभी मनुष्य (ध्यान-योग के अभ्यास द्वारा आत्म-दर्शन या ब्रह्मज्ञान से मोक्ष-लाभ रूपी) परम धर्म को नहीं जानते हैं, तो वे दम्भचारी व्यर्थ में नष्ट हो जाते हैं।।५८।।

**क्रियायासपराः केचिद् व्रतचर्यादिसंयुताः। अज्ञानसंवृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः॥५९॥**

कुछ मनुष्य तपश्चर्या आदि नाना क्रिया-कलापों में आयासशील रहते हैं तथा कुछ अन्य मनुष्य

व्रत-उपवास आदि में संलग्न रहते हैं। अज्ञान के आवरण से आच्छादित आत्मा वाले अनेक ढोंगी और ठग भी साधुओं के वेश को धारण करके विचरण करते हैं।।५९।।

**नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः।**
**मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतु-विस्तरैः॥६०॥**

कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य स्वर्गादि के फलों के नाममात्र से संतुष्ट रहते हुए वैदिक मन्त्रोचार और होम आदि कृत्यों तथा विस्तृत विधि-विधानों और विपुल सामग्रियों वाले विस्तृत यज्ञों के सम्पादन में ही उलझे रहते हैं।।६०।।

**एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः।**
**मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः॥६१॥**

मेरी माया से मोहित कुछ मनुष्य एक-भुक्त अर्थात् अहोरात्र में मात्र एक ही बार भोजन करने वाले या पूर्णतः उपवास करने वाले तथा शरीर को कृश बनाने वाले कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतों और नियमों का पालन करके परोक्ष तत्त्व या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं।।६१।।

**देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम्। वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः॥६२॥**

अपनी देह को पीड़ित करने से भला अज्ञानी मनुष्यों को कैसे मुक्ति मिल सकती है? क्या वल्मीक (बाँबी या दीमक के टीले) को पीटने से उसके अन्दर रहने वाला महासर्प कभी कहीं मरा है।।६२।।

**जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः।**
**भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि॥६३॥**

बड़ी लम्बी जटाओं वाले और मृगचर्म को धारण करने वाले साधु-संन्यासियों का वेश धारण किये हुए अनेक दम्भी-पाखण्डी लोग भी ज्ञानियों के समान दिखावा करते हुए लोक में भ्रमण करते हैं और अपने अनर्गल प्रवचनों से जनता को भी भ्रम में डालते हैं।।६३।।

**संसारज-सुखासक्तं[1] ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्।**
**कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥६४॥**

जो मनुष्य सांसारिक सुखोपभोग में आसक्त रहे और साथ ही साथ अपने को ब्रह्मज्ञानी भी कहे वह सांसारिक कर्म-मार्ग और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के दोनों मार्गों से ही भ्रष्ट हो जाता है। अतः उसको चाण्डाल के समान त्याग देना चाहिए।।६४।।

**गृहारण्यसमालोके गतव्रीडा दिगम्बराः।**
**चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम्॥६५॥**

घर और वन में समान रूप से निर्लज्ज और नंगे रहकर गधे आदि पशु भी विचरण करते हैं, तो क्या इस प्रकार के आचरण से वे संसार से विरक्त हो जाते हैं? कभी नहीं।।६५।।

---

१. द्र०-सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञा - उत्तररामचरित २/२२।

**मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर्यदि मानवाः।**
**मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा[1] सः किं मुक्तो भविष्यति॥६६॥**

यदि मिट्टी और भस्म धारण कर लेने मात्र से ही मनुष्य मुक्त हो जाते, तो जो कुत्ता नित्य ही मिट्टी और भस्म में पड़ा रहता है क्या वह भी मुक्ति को प्राप्त कर लेगा?।।६६।।

**तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः।**
**जम्बूकाऽऽखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम्॥६७॥**

घास -पात, पत्तों और जल का आहार करने वाले एवं नित्य वन में रहने वाले शृगाल (सियार), चूहे और मृग आदि पशु भी क्या तपस्वी-योगी हो जाते हैं? अर्थात् अन्न त्याग देने और ग्राम या नगर में निवास छोड़कर वन में निवास करने मात्र से कोई व्यक्ति योगी या संन्यासी नहीं हो जाता।।६७।।

**शीतवातातपसहा भक्ष्याभक्ष्यसमाः सदा।**
**तिष्ठन्ति सूकराद्याश्च योगिनस्ते भवन्ति किम्[2]॥६८॥**

सूकर आदि पाप योनियों के पशु वर्ष भर शीत, वात (आँधी) और आतप (धूप) को खुले आकाश के नीचे रहकर सहन करते हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य का कोई विचार नहीं करते, तो क्या वे योगी हो सकते हैं?।।६८।।

**आजन्मरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः।**
**मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम्॥६९॥**

मेंढक, मछली आदि जलचर जीव जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त गंगा आदि पवित्र नदियों में रहते हैं, तो क्या वे योगी हो ज़ाते हैं? अर्थात् पवित्र नदियों या तीर्थों में निवास करने मात्र से कोई व्यक्ति योगी नहीं हो जाता।।६९।।

**पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः।**
**न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम्॥७०॥**

कबूतर, कंकण-पत्थर खा लेते हैं और चातक कभी भी भूमि पर स्थित जल को नहीं पीते हैं। क्या वे इस प्रकार के कठिन आचरण से व्रती (व्रतपरायण) हो जाते हैं? अर्थात् ऐसे कठिन खान-पान और कठिन साधना मात्र से कोई मनुष्य तपो-व्रती नहीं हो जाता।।७०।।

**तस्मान्नित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम्।**
**मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं खगेश्वर!॥७१॥**

अतः सभी वर्णों और आश्रमों के मनुष्यों के लिए विहित नित्य कर्म और व्रतानुष्ठान आदि कर्म केवल लोकरञ्जन अर्थात् लोक की मनस्तुष्टि मात्र करते हैं। हे गरुड़! साक्षात् तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का कारण है।।७१।।

---

१. श्वानः किं -पाठान्तर

२. कुलार्णवतन्त्र १/८५ से संगृहीत पाठ।

**षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग! परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिताः॥७२॥**

हे गरुड़! षड्दर्शन[१] रूपी महाकूप (विशाल कुवें) में गिरे हुए नर-पशु परमार्थ अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप को नहीं जानते और जैसे गाय-भैंस आदि पशु रस्सी या लोहे के पाशों (बन्धनों) से बँधे रहते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य रूपी पशु[२] मायाजाल रूपी पाशों (या शैवमतानुसार मल, कर्म, माया और रोधरूपी चार प्रकार के पाशों[३]) से बँधे रहते हैं।।७२।।

***वेदशास्त्रार्णवे घोरे उह्यमाना इतस्ततः।**
**षड्ऊर्मिनिग्रहग्रस्तास्तिष्ठन्ति हि कुतार्किकाः॥७३॥**

कुतर्क करने वाले मनुष्य वेदशास्त्र रूपी घोर महासमुद्र में इधर-उधर थपेड़े खाते हुए अर्थात् एक-एक करके नाना ग्रन्थों के अध्ययन में उलझते हुए क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह तथा जरा-मृत्युरूपी छः उर्मियों[५] (उर्मिर्नाम आर्त्युत्पादकोऽवस्था विशेषः[६])के प्रशमन में ही व्यग्र रहते हैं ।।७३।।

**वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः। विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितम्॥७४॥**

वेदों, आगमों और पुराणों का ज्ञाता होने पर भी जो मनुष्य परमार्थ को नहीं जानता अर्थात् जो व्यक्ति मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ विषयक तत्त्व-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान से शून्य है, उस विद्या-विडम्बक अर्थात् ढोंगी का वह समस्त अध्ययन और उपदेश कौवे की काँव-काँव के समान व्यर्थ है।।७४।।

**इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः।**
**पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः॥७५॥**

परम तत्त्व अर्थात् परात्पर ब्रह्म से पराङ्मुख मनुष्य अपने अभिमत-अभीष्ट शास्त्र-विशेष को यही परम ज्ञान का विषय है और यही ज्ञेय (जानने योग्य)है ऐसा समझकर उसी की चिन्ता से व्यग्र होकर रात-दिन उसी का अध्ययन करते रहते हैं।।७५।।

---

१. षड्दर्शनों में कपिल के द्वारा रचित सांख्य, पतञ्जलि कृत योग, गौतम रचित न्याय, कणाद कृत वैशेषिक, व्यास रचित वेदान्त और जैमिनि कृत मीमांसा सूत्रों और इन सूत्र ग्रन्थों के आधार पर रचित दर्शन-ग्रन्थों को गिना जाता है।

२. शैवमत में जीवात्मा को पशु कहा गया है जो कि पाशों से बँधा रहता है। पाश-मुक्त होने पर वह शिव स्वरूप हो जाता है।

३. शैव मत में बन्धन को पाश कहते हैं। पाश-बद्ध होने के कारण जीवात्मा शिव-स्वरूप नहीं हो पाता। पाश चार प्रकार के होते हैं - मल, कर्म, माया और रोध। मल रूपी पाश से जीवात्मा की ज्ञान शक्ति एवं क्रियाशक्ति तिरोहित हो जाती है। फल की इच्छा से किया जाने वाला कर्म भी पाश बन जाता है। यह कर्म रूप पाश भी धर्म और अधर्म के भेद से दो प्रकार का माना गया है। माया रूप पाश से प्रलयकाल में समस्त संसार का संहार और सृष्टिकाल में उसका उद्भव होता है। उपर्युक्त तीन पाशों से बद्ध पशु के यथार्थ स्वरूप को आच्छादित करने वाले पाश को रोध कहते हैं।

४. वेदशास्त्रार्णववैर्घोरैरुह्यमाना-गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ४९/७२

५. क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मरण को षड्ऊर्मि कहा जाता है- मुद्गलोपनिषत् ४/७। द्र०-बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य, मनसः स्मृतौ। शोकमोहौ, शरीरस्य जरामृत्यू षड्ऊर्मयः। -शारदातिक १/४६-४७; प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने। जरामृत्यूशरीरस्य, षड्ऊर्मिरहितः शिवः।।- देवीभाग० ५/४/४१-४२।

६. शारदातिलक की पदार्थादर्श टीका।

**वाक्यच्छन्दोनिबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिना[1]।**
**चिन्तया दु:खिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रिया:॥७६॥**

काव्योचित अलंकारों से सुशोभित गद्य वाक्य-रचना या छन्दोबद्ध कविता की रचना करने पर भी विषयोपभोग के प्रति लालायित इन्द्रियों वाले तत्त्वज्ञानरहित मूढ़ कवि जन भी नाना चिन्ताओं के कारण दु:खी रहते हैं।।७६।।

**अन्यथा परमं तत्त्वं जना: क्लिश्यन्ति चान्यथा।**
**अन्यथा शास्त्रसद्भावो व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा॥७७॥**

परम तत्त्व तो अन्य प्रकार से ज्ञात होता है अर्थात् 'सर्वं ह वा खल्विदं ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि' इत्यादि प्रकारक गुरु के उपदेश से ज्ञात होता है, किन्तु मूर्खजन उसे पाने के लिए अन्य प्रकार के क्लेश उठाते हैं अर्थात् वे व्यर्थ ही व्रत, तप, यज्ञ, शास्त्राभ्यास, कुतर्क आदि का आश्रय लेकर क्लेश उठाते हैं। शास्त्र का भावार्थ अन्य प्रकार का होता है, किन्तु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न प्रकार से करते हैं।।७७।।

**कथयन्त्युन्मनीभावं[2] स्वयं नानुभवन्ति च। अहङ्काररता: केचिदुपदेशादिवर्जिता:॥७८॥**

कुछ अहंकारी मनुष्य गुरु से उपदेश ग्रहण किये विना भी ब्रह्मज्ञानी के समान आडम्बरपूर्ण मुख-मुद्रा में तत्त्वज्ञान विषयक अस्पष्ट बातें कहते हैं, जबकि उस विषय में स्वयं उनको कुछ भी यथार्थ अनुभूति नहीं होती है।।७८।।

**पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम्। नं जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा॥७९॥**

बहुत से लोग वेदों और शास्त्रों का अध्ययन करते है और परस्पर (एक-दूसरे को) उनका तात्पर्य समझाते हैं। किन्तु वे परम तत्त्व को उसी प्रकार नहीं जानते, जैसे कि दर्वी अर्थात् (कलछी या चम्मच) भोजन के रस को नहीं जानती।।७९।।

**शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका।**
**पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधक:॥८०॥**

यद्यपि शिर पुष्पों को धारण करता है, किन्तु उनकी सुगन्ध को नासिका ही जानती है। वेदों और शास्त्रों का अध्ययन बहुत-से लोग करते हैं, किन्तु उनके परम तत्त्व-विषयक भावार्थ का बोध कराने वाला गुरु दुर्लभ है।।८०।।

**तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढ: शास्त्रेषु मुह्यति।**
**गोप: कुक्षिगते छागे कूपे पश्यति दुर्मति:॥८१॥**

मूर्ख मनुष्य अपने हृदय में स्थित परम-तत्त्व रूप परमात्मा के अंश को नहीं जानता और उसको जानने के लिए शास्त्रों के अध्ययन में भटकता फिरता रह जाता है, जैसे कि कोई मूर्ख ग्वाला अपनी कोख में बकरे को पकड़े रखने पर भी उसको खोजने के लिए कुँए में देखता है।।८१।।

---

१. शोभिना-कुलार्णवतन्त्र १/९१ से स्वीकृत पाठ। शोभिता:- गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित।
२. उपशममुद्रया ब्रह्मपरत्वं कथयन्ति। (निर्णयसागर प्रेस से मुद्रित पाठ की टीका से उद्धृत)।

**संसारमोहनाशाय शाब्दबोधो न हि क्षमः। न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया॥८२॥**

सांसारिक मोह-माया को नष्ट करने में वेद और शास्त्रों का शब्दार्थ-बोध सक्षम नहीं है। दीपक के विषय में वार्तालाप करने मात्र से अन्धकार कदापि दूर नहीं हो पाता।।८२।।

**प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम्[1]।**
**अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम्॥८३॥**

बुद्धिहीन मनुष्य के लिए वेद-शास्त्रादि का अध्ययन अन्धे को दर्पण दिखलाने के समान निरर्थक है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को ही वेद-शास्त्रादि के अध्ययन से तत्त्वज्ञान लक्षित हो सकता है।।८३।।

**इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति। दिव्यवर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति॥८४॥**

जो व्यक्ति वेद शास्त्रादि विद्याओं की प्रत्येक विधा और तद्विषयक ग्रन्थ के बारे में यह मानता है कि इसमें भी ज्ञान की बातें हैं और यह भी जानने योग्य है और इस प्रकार की विचार-धारा बनाकर सभी कुछ सुनना या पढ़ना चाहता है, वह देवताओं की वर्ष गणनानुसार हजार वर्षों[2] की आयु प्राप्त करने पर भी शास्त्रों का पार नहीं पा सकता[3]।।८४।।

**अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः।**
**तस्मात्सारं विजानीयात्क्षीरं हंस इवाम्भसि॥८५॥**

शास्त्र अनेकानेक हैं, आयु अत्यल्प है और जीवन पर्यन्त करोड़ों विघ्न आते रहते हैं। अतः जैसे हंस जल में से दूध को निकाल लेता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को शास्त्रों का सारांश अर्थात् तत्व ज्ञान मात्र जान लेना चाहिए[4]।।८५।।

**अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाऽथ बुद्धिमान्।**
**पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत्॥८६॥**

बुद्धिमान् मनुष्य वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके उसमें से तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके उन सब वेद शास्त्रों को उसी प्रकार त्याग दे, जैसे कि धान को चाहने वाला कृषक पुवाल में से धान को निकालकर पुवाल को त्याग देता है।।८६।।

**यथाऽमृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्।**
**तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य! न शास्त्रेण प्रयोजनम्॥८७॥**

हे गरुड़! जैसे अमृतपान से तृप्त हो जाने पर भोजन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता अर्थात् भोजन की कोई आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार जिस मनुष्य को तत्त्वज्ञान हो जाता है, उसके लिए शास्त्र के अध्ययन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।।८७।।

---

१. प्रज्ञाहीनस्य पठनमन्धस्यादर्शदर्शनम्।। कुलार्णवतन्त्र १/९८।

२. मनुष्यों के एक वर्ष का समय देवताओं के एक अहोरात्र के बराबर होता है। अतः देवताओं के एक हजार वर्ष का समय ३६५००० दिव्य दिनों या ३६५०००० मानव वर्षों के बराबर होता है।

३. तु० -इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्। अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात्।। मार्क० ३८/१९

४. तु०-अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः। सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः।।

**न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि। ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज!॥८८॥**

हे वैनतेय गरुड़! न तो वेदों के अध्ययन से और न शास्त्रों के अध्ययन से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। एक मात्र तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष मिल सकता है, अन्यथा नहीं।।८८।।

**नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम्। तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम्॥८९॥**

मोक्ष-प्राप्ति का उपाय न तो आश्रम-धर्म (संन्यासादि) का पालन है और न दर्शन शास्त्रों का अध्ययन। इस प्रकार के (व्रतोपवास, तप और यज्ञ आदि) कर्म भी मोक्ष प्राप्ति के उपाय नहीं हैं। केवल तत्त्वज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का कारण है।।८९।।

**मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बिकाः।**
**काष्ठभारसहस्रेषु ह्येकं सञ्जीवनं परम्॥९०॥**

एकमात्र गुरु की वाणी ही मोक्ष देने वाली है अर्थात् गुरु से उपदेश रूप में प्राप्त तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस दृष्टि से अन्य सब विद्याऐं विडम्बना मात्र हैं। काष्ठ के हजारों गठ्ठरों की अपेक्षा एक संजीवनी लता ही परमोपयोगी होती है। तात्पर्य यह है कि सभी विद्याओं की अपेक्षा गुरु से प्राप्त तत्त्वज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है।।९०।।

**अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं[1] क्रियायासविवर्जितम्।**
**गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागमकोटिभिः॥९१॥**

व्रतोपवास, तपश्चर्या और यज्ञादि क्रियाओं तथा वेद शास्त्रादि के अध्ययन में होने वाले परिश्रम के विना ही गुरु से प्राप्त होने वाले अद्वैत ज्ञान को ही शिव अर्थात् परम कल्याण कारक कहा गया है। यह अद्वैत ज्ञान करोड़ों शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी प्राप्त नहीं होता। यह तो केवल गुरु के मुख से ही प्राप्त हो सकता है।।९१।।

**आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते। शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्मविवेकजम्॥९२॥**

ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक तो वेदशास्त्रादि में तथा आगमों में कथित ज्ञान और दूसरा आत्म-विवेक से जनित ज्ञान। आगम-निगम का ज्ञान शब्द ब्रह्मस्वरूप होता है और विवेक जनित ज्ञान परम ब्रह्मस्वरूप अर्थात् ब्रह्मविषयक होता है।।९२।।

**अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे। समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥९३॥**

परम ब्रह्मरूप परम तत्त्व के विषय में आदि शंकराचार्य तथा उनके मतानुयायी कई विद्वान् अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा चाहते हैं और मध्वाचार्य तथा उनके मतानुयायी अन्य विद्वान् द्वैतवाद की प्रतिष्ठा चाहते हैं। किन्तु द्वैतवाद और अद्वैतवाद से रहित और सब के द्वारा समान रूप से स्वीकार्य परम तत्त्व को कोई नहीं जानते।।९३।।

**द्वे पदे बन्धमोक्षाय ममेति न ममेति च। ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते[2]॥९४॥**

---

१. अद्वैतं हि शिवेनोक्तं.....। कुलार्णवतन्त्र १/१०८।

२. द्वे पदे बन्ध..... विमुच्यते। पैङ्गलोप० ४/१९; महोप० ४/७२; वराहोप० २/४३

देह-गेह, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पदा आदि के विषय में कहे जाने वाले 'मम' (मेरा) और 'न मम' मेरा नहीं' यह दो शब्द ही बन्धन और मोक्ष के कारण हैं। देह, गेह आदि के प्रति ममता के कारण 'मम' (मेरा है) कहने से मनुष्य बन्धन में पड़ता है और 'न मम' (मेरा नहीं है) ऐसी भावना होने पर वह मोक्ष का भागी होता है।।९४।।

**तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।**
**आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्॥९५॥**

वही कर्म सत्कर्म है, जो जीवात्मा के लिए बन्धन का कारण नहीं बनता और वही विद्या सुविद्या है, जो मोक्ष प्राप्त करा सकती हो। अन्य सब प्रकार का कर्म मात्र शारीरिक क्लेशप्रद होता है और अन्य प्रकार की विद्या शिल्प-चातुरी मात्र है।।९५।।

**यावत्कर्माणि दीप्यन्ते[1] यावत्संसारवासना।**
**यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः॥९६॥**

जब तक ममत्व भावना से कर्म किये जाते हैं एवं पूर्वकृत कर्म फलीभूत होते रहते हैं, जब तक संसार विषयक आसक्ति बनी रहती है, और जब तक इन्द्रियों की चञ्चलता बनी रहती है, तब तक तत्त्व-ज्ञान की बात ही कहाँ हो सकती है?।।९६।।

**यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि।**
**यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्प-कल्पना॥९७॥**
**यावन्नो मनसःस्थैर्यं[2] न यावच्छास्त्रचिन्तनम्।**
**यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः॥९८॥**

जब तक शरीर विषयक अभिमान रहता है, जबतक ममता बनी रहती है, जब तक प्रयत्नशीलता रहती है, जब तक संकल्प-भावना (या संकल्प-विकल्प की भावना) रहती है, जब तक मन स्थिर नहीं होता, जब तक शास्त्र चिन्तन नहीं होता, जब तक गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक तत्त्वज्ञान की चर्चा ही कैसे हो सकती है?।। ९७-९८।।

**तावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।**
**वेदशास्त्रागमकथा यावत्तत्त्वं न विन्दति॥९९॥**

मनुष्य के लिए तपश्चर्या, व्रत, तीर्थ, जप, होम, पूजा-पाठ आदि तथा वेदों, शास्त्रों और आगम-ग्रन्थों की कथा-वार्ता आदि तभी तक उपयोगी है जब तक कि वह तत्त्व-ज्ञान (अर्थात् आत्मा-परमात्मा विषयक ज्ञान) को नहीं प्राप्त कर लेता।।९९।।

**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।**
**तत्त्वनिष्ठो भवेत्ताक्ष्र्य! यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः॥१००॥**

---

१. दीप्यन्ते - गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ४९ से स्वीकृत पाठ। कुलार्णवतन्त्र १/११३ में 'यावत् कामादि' पाठ है।

२. समनः स्थैर्यं- निर्णयसागर संस्करण का पाठ।

हे गरुड़! यदि मनुष्य अपने मोक्ष की कामना करता है, तो वह सदैव, समस्त प्रयत्न से और सभी अवस्थाओं में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में संलग्न रहे ।।१००।।

**धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च। तापत्रयादिसन्तप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत्॥१०१॥**

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संज्ञक तीनों प्रकार के दु:खों से पीड़ित मनुष्य को धर्म और ज्ञान रूपी पुष्पों वाले तथा स्वर्ग और मोक्ष रूपी फलों को देने वाले मोक्षरूपी वृक्ष की छाया का आश्रय लेना चाहिए।।१०१।।

**तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात्।**
**सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्॥१०२॥**

अत: श्री गुरु के मुख से प्राप्त ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व को जानना चाहिए। उस (आत्मतत्त्व) का ज्ञान हो जाने पर जीव इस घोर सांसारिक बन्धन से सुख पूर्वक (सरलता से) मुक्त हो जाता है।।१०२।।

**तत्त्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना।**
**येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञकम्॥१०३॥**

अब तुम परम तत्त्व को जानने वाले मनुष्य के द्वारा अन्तिम समय में किये जाने वाले कृत्य के विषय में सुनो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ, जिसको करने से वह ब्रह्म-निर्वाण संज्ञक मोक्ष को प्राप्त करता है।।१०३।।

**अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः।**
**छिन्द्यादसंग-शस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्॥१०४॥**

अन्तकाल आ जाने पर पुरुष निर्भीक होकर असङ्ग अर्थात् अनासक्तिरूपी शस्त्र से अपने शरीर विषयक ममत्व और उसके साथ सम्बद्ध स्त्री-पुत्र-बान्धवादि तथा गृह सम्पदादि विषयक ममत्व के बन्धन को काट डाले।।१०४।।

**गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः।**
**शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने॥१०५॥**

तब वह धीर पुरुष घर से निकल कर पवित्र तीर्थ के जल में स्नान करके निर्जन स्थान में शुद्ध भूमि के ऊपर विधिवत् (कुशासन के ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर ऊनी या सूती) आसन लगाकर बैठे।।१०५।।

**अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्।**
**मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन्॥१०६॥**

तब परम ब्रह्म के वाचक शुद्ध 'त्रिवृत्' अक्षर 'अ' 'उ' और 'म्' अर्थात् 'ओऽऽऽम्' का मन ही मन अभ्यास करे और ब्रह्मबीज स्वरूप 'ॐ' का निरन्तर स्मरण (अर्थात् जप) करते हुए साँस को जीत कर मन को नियन्त्रित करे।।१०६।।

**नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः।**
**मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया॥१०७॥**

बुद्धिरूपी सारथी की सहायता से मन रूपी लगाम के द्वारा इन्द्रिय रूपी अश्वों को विषय-वासना की ओर से निवृत्त करे और कर्मों के द्वारा आकृष्ट (या विचलित) मन को शुभ प्रयोजन अर्थात् परम ब्रह्म के चिन्तन में लगावे ।।१०७।।

**अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माऽहं परमं पदम्।**
**एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥१०८॥**
**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।**
**यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्[1]॥१०९॥**

वह यह भावना करे कि 'परम धाम रूप ब्रह्म मैं ही हूँ'। ऐसी भावना करके अपने आत्मा को निष्कल (उपाधिरहित) परमात्मा में लगा करके 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए और मेरा (अर्थात् भगवान् विष्णु का ध्यान) करते हुए जो मनुष्य देहत्याग करके परलोक को प्रस्थान करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।।१०८-१०९।।

**न यत्र दाम्भिका यान्ति ज्ञानवैराग्यवर्जिताः।**
**सुधियस्तां गतिं यान्ति तानहं कथयामि ते[2]।**
**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।**
**द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्[3]॥११०॥**

[जहाँ ज्ञान और वैराग्य से रहित दाम्भिक मनुष्य नहीं जा सकते और सद्बुद्धि वाले मनुष्य ही जिस गति को प्राप्त करते हैं, उसे मैं तुमको बतलाता हूँ।] अभिमान और मोह से रहित, पुत्र-स्त्री-धन-सम्पदा आदि की आसक्ति रूपी दोष पर विजय प्राप्त कर लेने वाले, नित्य अध्यात्म-ज्ञान-परायण अर्थात् सदा परमात्मा के स्वरूप के चिन्तन में संलग्न रहने वाले तथा समस्त कामनाओं अर्थात् विषयोपभोग की अभिलाषाओं से रहित और क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण और सुख-दुःख के द्वन्द्वों[4] से मुक्त ज्ञानी जन ही उस शाश्वत और अविनाशी परम पद को प्राप्त करते हैं।।११०।।

**ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥१११॥**

जो मनुष्य राग-द्वेषरूपी मल को छुड़ाने में समर्थ सत्यरूपी जल वाले और ज्ञानरूपी सरोवर वाले मानस तीर्थ में स्नान करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।।१११।।

**प्रौढं वैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्।**
**पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥११२॥**

पूर्ण-परम ब्रह्म में दृष्टि को केन्द्रित रखने वाला और निर्मल आत्मा वाला जो मनुष्य दृढ़ वैराग्य को

---

१. श्रीमद्भगवद्गीत ८/१३ से उद्धृत।
२. गरुड ध.का.प्रे.ख. ४९/१०९ से उद्धृत।
३. श्रीमद्भगवद् गीता १५/५से उद्धृत।
४. क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण आदि सुख-दुःखादिप्रद भावों को द्वन्द्व कहा गया है।

धारण करके अन्य विषयों का चिन्तन त्याग करके अनन्य भाव से मेरा (अर्थात् भगवान् विष्णु का) भजन करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।।११२।।

**त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोसुकः[1]।**
**म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥११३॥**

जो मनुष्य सांसारिक जीवन से कृतकृत्य होकर मृत्यु की उत्कण्ठा से गृह-त्याग करके तीर्थ में निवास करता है और मुक्ति देने वाले क्षेत्रों (अर्थात् मोक्ष-प्रद तीर्थ-स्थानों) में देह-त्याग करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।।११३।।

**अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।**
**पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥११४॥**

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (अर्थात् हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पुरियाँ मोक्षदायिनी हैं।।११४।।

**इति ते कथितं तार्क्ष्य! मोक्षधर्मं सनातनम्।**
**ज्ञानवैराग्यसहितं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥११५॥**

हे गरुड़! मैंने यह सनातन मोक्षधर्म तुमको बतला दिया है। इसे ज्ञान और वैराग्य के साथ सुन करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।।११५।।

**मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञाः धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः।**
**पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥११६॥**

तत्त्वज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करते हैं, धार्मिक मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, पापी मनुष्य प्रेत योनि में या नरक में दुर्गति को प्राप्त करते हैं और पशु-पक्षी आदि जीव संसार में पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करते रहते हैं।।११६।।

**इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः।**
**मया ते षोडशाध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११७॥**

इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिए सभी शास्त्रों का सार उद्धृत करके इन सोलह अध्यायों में निरूपित कर दिया है। अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो?।।११७।।

सूत उवाच

**एवं श्रुत्वा वचो राजन् गरुडो भगवन्मुखात्।**
**कृताञ्जलिरुवाचेदं तं प्रणम्य मुहुर्मुहुः॥११८॥**

सूत जी बोले—हे राजन्! गरुड़ ने भगवान् विष्णु के मुख से इस प्रकार के वचनों को सुनकर हाथ जोड़कर उन्हें बार-बार प्रणाम करके यह कहा।।११८।।

---

१. द्र०-कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्।

गरुड उवाच

**भगवन् देवदेवेश श्रावयित्वा वचोऽमृतम्।**
**तारितोऽहं त्वया नाथ भवसागरतः प्रभो॥११९॥**

गरुड़ बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे नाथ! हे प्रभो! आपने अमृततुल्य वचनों को सुना करके भवसागर से मेरा उद्धार कर दिया है।।११९।।

**स्थितोऽस्मि गतसन्देहः कृतार्थोऽस्मि न संशयः।**
**इत्युक्त्वा गरुडस्तूष्णीं स्थित्वा ध्यानपरोऽभवत्॥१२०॥**

अब मेरा सन्देह दूर हो गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं कृतार्थ हो गया हूँ। ऐसा कहकर गरुड़जी मौन होकर भगवद्-ध्यान-परायण हो गये थे।।१२०।।

**स्मरणाद्दुर्गतिहर्ता पूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता।**
**यः परया निजभक्त्या ददाति मुक्तिं स मां हरिः पातु॥१२१॥**

**।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥**

जो भगवान् विष्णु भक्तों के द्वारा स्मरण किये जाने पर उनकी दुर्गति का हरण करते हैं अर्थात् दुर्गति से उनका उद्धार करते हैं, पूजन और यजन (यज्ञ) से सन्तुष्ट होकर उनको सद्गति प्रदान करते हैं तथा अपनी परम भक्ति से मुक्ति प्रदान करते हैं, वे मेरी रक्षा करें।।१२१।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में मोक्षधर्मनिरूपणात्मक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

❖❖❖

**।।उत्तर खण्ड समाप्त।।**